Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 22, Issue No. 3, April-2025, ISSN 2230-7540

DOI: https://doi.org/10.29070/a50pkq43

Check for updates

छोटा नागपुर क्षेत्र में मुंडाओं और उरांवों के बीच राजनीतिक परिवर्तन की गतिशीलता पर एक अध्ययन

महेंद्र कुमार [1] *

1. सह - प्राध्यापक, युनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, जयपुर, राजस्थान, भारत
professormahendra1976@gmail.com

सारांश: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान के अंतर्गत पाँचवीं अनुसूची, पेसा अधिनियम तथा अन्य जनजातीय संरक्षण कानूनों ने मुंडा और उरांव समुदायों को नए अधिकार और राजनीतिक भागीदारी के अवसर प्रदान किए। बावजूद इसके, औद्योगिकीकरण, खनन और भूमि अधिग्रहण जैसी विकासपरक गतिविधियों ने पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं को चुनौती दी, जिससे इन समुदायों में राजनीतिक संघर्ष, आंदोलनों और संगठनों का उदय हुआ।

मुख्य शब्द: राजनीतिक, प्राकृतिक, मुंउाओं, गतिशीलता, सवतंत्रता

परिचय

सदियों की भारी खेती ने इसकी अधिकांश प्राकृतिक वनस्पति के पठार को समाप्त कर दिया है, हालांकि कुछ मूल्यवान वन अभी भी बने हुए हैं। तुषाह रेशम और लाख जैसे वन उत्पाद आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। छोटा नागपुर क्षेत्र में भारत में खनिज संसाधनों की सबसे मूल्यवान सांद्रता है। दामोदर घाटी में कोयले के विशाल भंडार हैं और हजारीबाग क्षेत्र दुनिया में अभ्रक के मुख्य स्रोतों में से एक है। अन्य खनिज हैं तांबा, चूना पत्थर, बॉक्साइट, लौह अयस्क, एस्बेस्टस और एपेटाइट। बिजली पैदा करने के लिए एक विशाल तापीय संयंत्र और एक बड़ी इस्पात मिल पूर्वी झारखंड के बोकारो में स्थित है। रेलमार्ग पठार को पार करते हुए कोलकाता (कलकत्ता) पश्चिम बंगाल को उत्तर में पटना, बिहार के साथ दक्षिण-पूर्व में जोड़ते हैं और दक्षिण और पश्चिम के अन्य शहरों को भी जोड़ते हैं।

अध्ययन की परिभाषा और उद्देश्य

मुंडा और उरांवों के राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं और गतिशीलताओं का विश्लेषण इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छोटा नागपुर क्षेत्र, विशेष रूप से मुंडा और उरांव जनजातियों के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं को समझना है। इन दोनों जनजातियों ने समय के साथ अपनी पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में बदलाव देखा है, जो औपनिवेशिक हस्तक्षेप, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों, और बाद के राजनीतिक आंदोलनों द्वारा प्रभावित हुए।

· **राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ:** मुंडा और उरांव जनजातियों की पारंपरिक राजनीतिक व्यवस्थाएं जैसे मानकी और परहा पंचायत, ब्रिटिश काल में व्यवधान का सामना करती हैं। स्वतंत्रता के बाद इन जनजातियों के राजनीतिक अधिकारों का पुनर्निर्माण हुआ, और यह आंदोलन झारखंड राज्य के गठन तक पहुंचा।

· **गतिशीलताओं का विश्लेषण:** यह अध्ययन उन गतिशीलताओं का विश्लेषण करता है जो इन जनजातियों के राजनीतिक संघर्ष, आदिवासी अधिकारों के लिए उनकी आवाज, और उनकी पारंपरिक पहचान को प्रभावित करती हैं। इसके साथ ही, यह बदलावों के सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक पहलुओं को भी उजागर करेगा।

भौगोलिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमिरु छोटा नागपुर क्षेत्र की जलवायु, संसाधन और स्थानिक संरचना।

छोटानागपुर क्षेत्र पूर्वी भारत में एक पठार है, जो हाल ही में बनाए गए झारखंड राज्य के साथ-साथ उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार

और छत्तीसगढ़ के सीमावर्ती क्षेत्रों को कवर करता है। गोंडवाना सब्सट्रेट्स पठार के प्राचीन मूल की पुष्टि करते हैं। भू-ऐतिहासिक रुप से, यह दक्कन प्लेट का हिस्सा था, जो क्रेटेशियस अवधि के दौरान दक्षिणी महाद्वीप से 50 मिलियन वर्ष की यात्रा शुरू करने के लिए मुक्त हो गया था, जिसे उत्तरी यूरेशियन महाद्वीप ने हिंसक रुप से बाधित किया था। जलवायु की दृष्टि से, छोटानागपुर क्षेत्र में आस-पास के पारिस्थितिक क्षेत्रों की तुलना में कम वर्षा होती है, जो इसकी शुष्क वनस्पति की व्याख्या करता है। हालाँकि, इसमें नम पर्णपाती वनों और दलदली क्षेत्रों के हिस्से शामिल हैं, जिससे कृषि के लिए विविध पारिस्थितिकी प्रदान की जाती है। इस क्षेत्र का नाम संभवतः देश के इस हिस्से में शासन करने वाले नागवंशियों और रांची के बाहरी इलाके में स्थित चुटिया गांव से लिया गया है, जिसमें नागवंशियों से संबंधित एक पुराने किले के अवशेष हैं। नवनिर्मित राज्य झारखंड का नाम, जो पठार के प्रमुख हिस्से को कवर करता है, झाड़ियों की वनस्पति के प्रभुत्व से लिया गया है, जिसे स्थानीय रुप से श्झरीश् कहा जाता है।

कृषि और कृषि जैव विविधता

अच्छी वर्षा के बावजूद, ढलान, लहरदार भूभाग, सिंचाई की अनुपलब्धता और खराब जल और मिट्टी संरक्षण के कारण इस क्षेत्र में फसल उत्पादकता बहुत कम है। इस क्षेत्र की संक्रमणकालीन जलवायु (शुष्क और गर्म आर्द्र) फसल पैटर्न में प्रतिबिंबित होती है, जो गीली और सूखी फसलों के मिश्रण की खेती को दर्शाती है। चावल हर जगह प्रमुख फसल है, जबकि मक्का, गेहूं, जौ, छोटे मोटे अनाज, चना, तिलहन और दालें (फलियां) पूरक फसलें हैं। गन्ना काफी कम खपत वाले क्षेत्रों में उगाया जाता है। जूट, गर्म, नम निचले इलाकों की एक फसल, केवल सबसे पूर्वी जिलों में पाई जाती है।

वर्षा आधारित कृषि पारंपरिक खेती है, जो इस क्षेत्र में प्रचलित है। आदिवासी किसानों के बीच एक स्थल-अनुक्रमिक भूमि उपयोग प्रचलित है। हल्की बनावट वाली लाल मिट्टी के साथ ऊँची और मध्यम ढलानों पर नाइजर, फलीदार पेड़, ऊपरी भूमि चावल, फिंगर मिलेट, मक्का, अरहर आदि की खेती की जाती है। हल्की या भारी बनावट वाली रेतीली मिट्टी वाली मध्यम ढलानों में खरीफ में चावल और रबी में सब्जियों के साथ खेती की जाती हैय और निचली ढलानों के निचले इलाकों और भारी मिट्टी वाले गहरे निचले इलाकों में चावल के साथ खेती की जाती है। इस प्रकार बरसात के मौसम (खरीफ) के दौरान चावल, बाजरा, मक्का और अरहर प्रमुख फसलें हैं और बारिश के बाद के मौसम में सब्जियां, दालें और तिलहन प्रमुख फसलें हैं। सिंचित परिस्थितियों में चावल और गेहूं की खेती भी की जाती है। रागी, लाल चना और काले चना की सीधी बुवाई और मक्के का रिज रोपण इस क्षेत्र में अपनाई जाने वाली कुछ आम अनूठी प्रथाएं हैं।

आदिवासी अवधारणा में उन्नति

एस.एन. त्रिपाठी के अनुसार, श्यह देखना दिलचस्प है कि सरकारी कार्रवाई से आदिवासियों का अलगाव अपेक्षाकृत कम हुआ, जिससे आदिवासियों की निर्भरता बढ़ी। इससे आदिवासियों की गैर-आदिवासियों के अधीनता बढ़ी।श् आईपी देसाई ने देखा कि आदिवासियों के बीच गैर-आदिवासी आबादी की छवि केवल शोषक की थी, जैसे पुलिस, जमींदार, साहूकार, खनन माफिया और सरकारी अधिकारी। उनके लिए पहले शोषक थे और फिर गैर-आदिवासी। इन शोषकों ने आधुनिकीकरण और विकास का इस्तेमाल आदिवासियों को उनकी जमीन और जंगल से बेदखल करने के लिए किया।

गरीब आदिवासियों को उनकी दयनीय स्थिति से ऊपर उठाने के लिए संवैधानिक प्रावधानों के एक भाग के रूप में सरकारों (राज्य और केंद्र दोनों) द्वारा अपनाई गई विशेष नीतियों और कार्यक्रमों से उनके जीवन में कोई सकारात्मक बदलाव नहीं आया। आदिवासियों से गैर-आदिवासियों को भूमि हस्तांतरण को प्रतिबंधित करने वाले कानून की परवाह किए बिना उनकी जमीनें गैर-आदिवासी आबादी द्वारा हर तरह से हड़पी जाती रहीं। इस बेदखली और विस्थापन के परिणामस्वरूप 1961 से 1991 तक काश्तकारों का प्रतिशत गिर गया। मध्य प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, बिहार, असम और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में आदिवासियों की जबरन बेदखली के पंजीकृत मामलों की संख्या 465,000 थी। 1961 में उपरोक्त राज्यों में आदिवासियों में काश्तकारों की कुल संख्या 68.15 थी, जो 1991 में तेजी से घटकर 54.5 हो गई। तदनुसार, कृषि मजदूरों की संख्या 19.71 से बढ़कर 32.69 हो गई।

अगर सरकार ने गंडक परियोजना पर तुरंत काम शुरू नहीं किया तो तिरहुत में विद्रोह हो जाएगा। झारखंड पार्टी के सदस्य ने भी

इसी तरह की भावना व्यक्त की और कहा कि अगर सरकार इस क्षेत्र के ज्वलंत मुद्दों की अनदेखी करती रही तो छोटानागपुर बिहार से अलग होना पसंद करेगा। झारखंड पार्टी के श्री चुनका हेम्ब्रोम ने सरकार से निचले दर्जे के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि करने और उच्च अधिकारियों के वेतन में कटौती करने की मांग की। उन्होंने सरकार से आदिवासियों के साथ बेहतर व्यवहार करने और उनकी भावनाओं को समझने की कोशिश करने का भी आह्वान किया।

आदिवासियों के लिए उनके समुदाय के विकास के लिए सरकार की पहल एक अलग समाज के विचार पर आधारित थी। वन उत्पाद पर उनके पारंपरिक अधिकार, गांव की जमीन पर सामुदायिक स्वामित्व, बाहरी लोगों के शोषण से सुरक्षा, खनन माफियाओं, उद्योगपतियों द्वारा उनके प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक, असंगत और अंधाधुंध उपयोग से सुरक्षा और अंत में निर्वाह खेती आदिवासी समुदाय के विकास के मूल आदर्श थे।

औद्योगीकरण और खनन के प्रभाव

स्वतंत्रता के बाद से ही भारत सरकार और नीति निर्माताओं ने उन प्रक्रियाओं को गति देने की कोशिश की है जो आदिवासी समाज को उनके गैर-आदिवासी समकक्षों के करीब लाने में मदद करेंगी और इस तरह उन्हें राष्ट्र के विकास में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करेंगी। आदिवासी क्षेत्र को विकसित करने या आदिवासी आबादी को ऊपर उठाने की सरकारी नीति को प्रगतिशील दुनिया से आदिवासी समुदाय के ऐतिहासिक अलगाव को रोकने के लिए एक पूर्व-निर्धारित धारणा द्वारा चिह्नित किया गया है। आदिवासियों को विकास परियोजनाओं में भाग लेना चाहिए ताकि वे आधुनिक दुनिया के साथ श्मुख्यधारा या एकीकृत हो सकें। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और निजी खिलाड़ियों द्वारा उनके संसाधनों का दोहन विकास की प्रक्रिया में सरकार के लिए सबसे कम चिंता का विषय है। बड़े गैर-आदिवासी समाज के साथ उनके सापेक्ष अलगाव को समाप्त करना शायद आदिवासी समुदाय के विकास के लिए नहीं है, बल्कि बाहरी लोगों और अभिजात वर्ग द्वारा उनके प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के द्वार खोलना है।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में जब औपनिवेशिक प्रशासन ने धनबाद जिले के झरिया, बोकारो और कर्णपुरा में कोयला खनन का विकास करना शुरू किया, तो तांबा, बॉक्साइट, क्रोमाइट और ग्रेफाइट जैसे खनिजों के उत्पादन के लिए कई अन्य खदानों की घोषणा की गई। इन निष्कर्षण उद्योगों के साथ-साथ रांची के पास हटिया में विनिर्माण उद्योगों की एक श्रृंखला विकसित हुई। इस तरह के औद्योगिक विकास के साथ जमशेदपुर, धनबाद, रांची और बोकारो में चार प्रमुख शहरी समूह तेजी से विकसित हुए। रांची विश्वविद्यालय के श्री एलपी विद्यार्थी ने बताया कि हटिया क्षेत्र में एक औद्योगिक स्थल चुनने का एक कारण यह था कि यह औद्योगिक केंद्र के आसपास के ग्रामीणों को वैकल्पिक रोजगार प्रदान कर सकता था। लेकिन जब उद्योग शुरू हुआ, तो स्थानीय निवासी, विशेष रूप से आदिवासी, बाहर चले गए थे। उन्होंने कहा कि एक संयंत्र में 4,619 श्रमिकों में से केवल 335 आदिवासी थे।

भूमि से पृथक्करण

आदिवासियों ने अपने अधिकारों और जमीन तथा जंगल के साथ संबंधों को लेकर कई मिथक और किंवदंतियाँ गढ़ी हैं। उरांव की उत्पत्ति की कहानी सत-पति-राज शब्द से शुरु होती है जिसका अर्थ है जमीन की सात पट्टियाँ। सात पट्टों वाली भूमि का देश भूमि की समग्रता, यानी पूरे विश्व का प्रतीक है। उनके लिए जमीन मिट्टी की ऊपरी परत से कहीं अधिक है जहां पौधे, पेड़ और सब्जियां उगती हैं। इसके अलावा, इसमें धरती के नीचे और ऊपर जो कुछ भी है वह सब शामिल है। तदनुसार, जल निकाय, जंगल, पहाड़, पहाड़ियाँ सहित जीवित प्राणी, मनुष्य और जानवर भूमि का हिस्सा हैं। आदिवासियों के लिए जमीन उनकी आजीविका का प्राथमिक स्रोत है। आदिवासियों को जमीन और प्रकृति के साथ एक विशेष रिश्ते में अपने संबंधित आदिवासी समुदाय या कबीले से संबंधित होने के कारण उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान भी मिलती है। उनके उपनाम, जैसे मुंडाओं में टोपनो जिसका अर्थ पक्षी है, उरांवों में एक्का का अर्थ कछुआ और खारिया लोगों में सोरेन का अर्थ चट्टान है इसी तरह, उपनाम आदिवासियों के संसाधनों के साथ जुड़ाव को दर्शाते हैं जैसे हंसदा (संथाली और हो में मिट्टी-सह-पानी), जेस (ओरांव में धान), पन्ना (ओरांव में लोहा) और बेक, बिलुंग और बुलुंग (क्रमशः ओरांव, मुंडा और खारिया में नमक)। इसलिए, हम कह सकते हैं कि भूमि आदिवासी सांस्कृतिक और धार्मिक प्रथाओं और संगठनात्मक प्रणाली (सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक प्रथाओं) के केंद्र में है। इसलिए, भूमि आदिवासी पहचान का मूल है। उनका भूमि के साथ एक प्रकार का आध्यात्मिक संबंध है जो उनके सामाजिक-सांस्कृतिक

उत्सवों में झलकता है। भूमि पर उनका अधिकार पूरी तरह से प्राकृतिक है और तदनुसार इसे वस्तु के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। भूमि पर अधिकार अनिवार्य रूप से उनके क्षेत्रीय अर्थ और उनके पर्यावरण या स्थान के साथ जैविक संबंध से संबंधित है

औद्योगीकरण और शहरीकरण, जो आधुनिकीकरण के दो मुख्य घटक थे, आदिवासियों को उनकी जमीन से अलग करने का एक तंत्र साबित हुए। फैलते शहरों और कस्बों ने सीमावर्ती गांवों को हड़प लिया। औद्योगिक विकास और खनन ने आदिवासी जमीन के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया। कुछ कुलीन आदिवासी आकर्षित हुए और कई गरीब लोग वैश्वीकृत आधुनिक अर्थव्यवस्था की ओर मजबूर हुए। इस नए विकास ने आदिवासी समाज के सामाजिक ताने-बाने को बदल दिया। शिक्षित आदिवासियों के लिए सरकारी नौकरी पहली प्राथमिकता बन गई। इसका नतीजा यह हुआ कि आदिवासी अपने गांवों से जानबूझकर शहरों की ओर पलायन करने लगे। हल की जगह नौकरी ने ले ली। जीविका खेती की जगह पूंजीवादी खेती ने ले ली। इस विकास मॉडल का सबसे घातक प्रभाव आदिवासी समाज के भीतर से विभाजन के रूप में देखा जा सकता है। आदिवासी समाज का वह तबका, जो इस विकास मॉडल से लाभान्वित हुआ, वह शिक्षित या कुलीन आदिवासी था। गरीब आदिवासी को इस मॉडल से शायद ही कोई हिस्सा मिला। इन बदलावों

नये राज्य की स्थापना और आदिवासी राजनीतिक आंदोलन

झारखंड के नेताओं के मन में यह बात थी कि अलग राज्य के निर्माण के बिना आर्थिक और सामाजिक न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इन्हें प्राप्त करने के लिए झारखंड राज्य की मांग अपरिहार्य थी। अलग राज्य के आंदोलन के नेताओं का मानना था कि आदिवासी पहचान पर आधारित एक नया अलग राज्य ही क्षेत्र की मूल आबादी को सर्वांगीण विकास प्रदान कर सकता है। उनका मानना था कि क्षेत्र के हर क्षेत्र में विकास तभी संभव है जब मूल निवासियों को उनका अपना मालिक बनाया जाए और उनकी धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की जाए। क्षेत्र के आदिवासी नेताओं ने क्षेत्र के मूल आदिवासी लोगों की "आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान के लिए आत्मनिर्णय के सामूहिक अधिकार" की मांग की। इसलिए, अलग झारखंड राज्य के लिए आंदोलन को राजनीतिक आत्म-अभिकथन के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो क्षेत्र के गैर-आदिवासियों के प्रमुख समूह को चुनौती प्रदान करता है। पूर्वोत्तर आदिवासी आंदोलन के विपरीत, झारखंड आंदोलन कभी भी गैर-आदिवासी समाज के गरीब तबके के खिलाफ नहीं था। उत्पीड़ित पहचान की राजनीतिक चेतना ने संभवतः उस समय आंदोलन के लिए समर्थन आधार प्रदान किया जब जातीय पहचान की राजनीति क्षेत्रीय पहचान की राजनीति में परिवर्तित हो रही थी।

झारखंड आंदोलन के नेताओं ने महसूस किया कि जब तक वे दिकूओं को सत्ता से बाहर नहीं निकाल देते, तब तक क्षेत्र के आम आदिवासियों के हितों की रक्षा और संरक्षण करना लगभग असंभव है। यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे अखिल आदिवासी संगठनों के संगठन में परिणत हुई, जैसे झारखंड पार्टी, जिसने क्षेत्र में झारखंड आंदोलन का नेतृत्व करना शुरू किया। झारखंड पार्टी के गठन के साथ ही क्षेत्र के बिखरे हुए आदिवासी आंदोलन एक पार्टी संरचना में बदल गए और पार्टी आधारित आंदोलन बन गए। उपजीत सिंह रेखी के अनुसार झारखंड आंदोलन की प्रमुख ताकतें राजनीतिक नहीं बल्कि आर्थिक और जातीय थीं, आंदोलन की राजनीतिक संस्कृति इन ताकतों की एक रणनीति या परिणाम है। आंदोलन के नेताओं ने आर्थिक शोषण के मुद्दे पर जनता को लामबंद करने की कोशिश की।

आदिवासी महासभा

मैं झारखंड के लोगों के बारे में अधिकारपूर्वक बोल सकता हूँ, जो बिहार की आबादी का एक तिहाई हिस्सा हैं और उन्होंने कहा कि वे बिना किसी शर्त के ब्रिटेन के लिए लड़ने के लिए उत्सुक हैं। लेकिन भारतीय तब तक अपनी पूरी भूमिका नहीं निभा सकते जब तक कि उनके साथ पूर्ण विश्वास के साथ व्यवहार न किया जाए, भारतीय रक्षा की हर शाखा में उन्हें प्रवेश न दिया जाए और सभी भेदभावों को मिटा न दिया जाए।

जब तक ब्रिटिश सरकार शक्तिशाली थी, जयपाल सिंह ने कभी भी औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ अपने लोगों को आजाद करने की कोशिश नहीं की। इसके विपरीत उन्होंने आदिवासी आबादी को जमींदारों और बनियों के चंगुल से आजाद कराने के

लिए खुद को ब्रिटिश सरकार का सहयोगी साबित करने की भी भरपूर कोशिश की। वे वही कर रहे थे जो सर सैयद अहमद खान ने आधी सदी पहले किया था जब उन्होंने द लॉयल मुहम्मदन्स ऑफ इंडिया लिखा था। आदिवासी महासभा के नेता ने दिकू शब्द को फिर से परिभाषित करने की भी कोशिश की। उन्होंने कहारू

झारखंड पार्टी में विभाजन और अखिल भारतीय झारखंड पार्टी का गठन

1967 के चुनाव झारखंड की पार्टियों और झारखंड की राजनीति के लिए एक बड़ा झटका थे। झारखंड पार्टी में अलगाव की प्रक्रिया विलय के तुरंत बाद ही शुरू हो गई थी। झारखंड पार्टी का कांग्रेस में विलय झारखंड क्षेत्र में आदिवासी राजनीति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। 1967 के चुनाव के नतीजों ने आदिवासी पहचान की राजनीति को एक बड़ा झटका दिया। कई आदिवासी नेताओं ने चुनाव नतीजों पर अपने विचार व्यक्त किए और नतीजों का विश्लेषण झारखंड की विचारधारा के साथ विश्वासघात के रूप में किया।

झारखंड पार्टी के प्रमुख गैर-आदिवासी नेताओं में से एक एचएन सहदेव ने पुरानी झारखंड पार्टी को जारी रखने की मांग की और चुनाव आयोग से सहदेव झारखंड पार्टी को मुर्गा चुनाव चिन्ह देने का अनुरोध किया। लेकिन चुनाव आयोग ने सहदेव झारखंड पार्टी की मांग को स्वीकार नहीं किया। सहदेव झारखंड पार्टी के अलावा झारखंड पार्टी के कई अन्य गुट भी थे जिन्होंने 1967 का चुनाव अलग-अलग लड़ा था। आम चुनावों में हार के बाद आदिवासी नेताओं को एहसास हुआ कि अलग-अलग रहकर वे आदिवासी आबादी पर कोई प्रभाव नहीं डाल पा रहे हैं। लंबी चर्चा के बाद वे झारखंड पार्टी के विभिन्न समूहों को एकजुट करने के निर्णय पर पहुंचे। होरो, बागे, तिग्गा और अन्य जैसे कई नेताओं के बीच मतभेद के बावजूद, उन्होंने अखिल भारतीय झारखंड पार्टी नामक एक नई पार्टी बनाई।

जनजातीय राजनीतिक संरचनाओं और पृथक राज्य का निर्माण

झारखंड आंदोलन को दक्षिण बिहार की आदिवासी आबादी पर लंबे समय से हो रहे अत्याचार के खिलाफ आंदोलन के रूप में देखा जा सकता है। शुरुआत में इसका नेतृत्व शिक्षित आदिवासियों के एक समूह ने किया था। यह आंदोलन दिकूओं के खिलाफ था, जिन्हें वे (आतंकवादी) अपना स्वामी मानते थे। इस क्षेत्र के आदिवासी खुद को छत्तीसगढ़ के मूल निवासी बताते थे।

इस आंदोलन का मुख्य कारण आर्थिक और राजनीतिक अन्याय था। इसलिए इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र में सभी प्रकार के सामाजिक शोषण को समाप्त करना था। इस पर चर्चा करते हुए झारखंड के एक प्रमुख वक्ता और अलग राज्य के समर्थक राम दयाल मुंडा ने एक बार कहा था कि ष्आंदोलन का उद्देश्य इस क्षेत्र को सभी प्रकार के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना था।

झारखंड के नेताओं का मानना था कि अलग राज्य के निर्माण के बिना आर्थिक और सामाजिक न्याय का उद्देश्य हासिल नहीं किया जा सकता। इन्हें हासिल करने के लिए झारखंड राज्य की मांग अपरिहार्य थी। अलग राज्य आंदोलन के नेताओं का मानना था कि आदिवासी पहचान पर आधारित एक नया अलग राज्य ही क्षेत्र की मूल आबादी को सर्वांगीण विकास प्रदान कर सकता है। उनका मानना था कि क्षेत्र के हर क्षेत्र में विकास तभी संभव है जब मूल निवासियों को उनका स्वामी बनाया जाए और उनकी धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की जाए। विद्रोही नेताओं ने १क्षेत्र के मूल निवासियों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान के लिए आत्मनिर्णय के मौलिक अधिकारश् की मांग की। इसलिए अलग झारखंड राज्य के लिए आंदोलन को एक राजनीतिक आत्म-अभिकथन के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसने क्षेत्र के गैर-विद्रोहियों के प्रमुख समूह को चुनौती दी। पूर्वोत्तर विद्रोही आंदोलन के विपरीत, झारखंड आंदोलन कभी भी गैर-विद्रोही समुदाय के गरीब तबकों के खिलाफ नहीं था। उत्पीड़ित पहचान की राजनीतिक चेतना ने शायद उस समय आंदोलन को समर्थन देने का आधार प्रदान किया जब जातीय पहचान की राजनीति क्षेत्रीय पहचान की राजनीति में बदल रही थी।

निष्कर्ष

छोटानागपुर में मिशनरी उस समय प्रकट हुए जब आदिवासियों को जमींदारों और साहूकारों की लूट और शोषण के खिलाफ अपने संघर्ष में समर्थन और नेतृत्व की सख्त जरूरत थी। भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा था जिसे उन्होंने तुरंत

उठाया। ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपनी समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास नहीं किया, जैसा कि विभिन्न विद्रोहों जैसे 1831 में महान कोल विद्रोह, भूमिजों का गंगा नारायण विद्रोह, संथाल विद्रोह, हो विद्रोह, पलामू में भोगता विद्रोह और 1857 के विद्रोह में लोकप्रिय विद्रोह से अनुमान लगाया जा सकता है। इनके परिणामस्वरूप आदिवासियों की हत्या हुई और उनके खिलाफ कड़े कानून पारित किए गए। इसलिए, वे अब किसी भी तिनके को पकड़ने के लिए तैयार थे जो उन्हें अपने दुख से बाहर निकलने का रास्ता दे सके। ईसाई धर्म अपनाने के आदिवासियों के उद्देश्यों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि मिशनरियों में उनकी एकमात्र उम्मीद अधिकारियों द्वारा उनकी शिकायतों पर ध्यान देने की थी। अवचेतन रूप से शायद उन्हें यह भी लगा कि अगर वे ईसाई के रूप में अपनी कानूनी लड़ाई लड़ेंगे, तो मिशनरियों की औपनिवेशिक राज्य से कथित निकटता के कारण उनके पास बेहतर मौका होगा। इस प्रकार, यह किसी आध्यात्मिक आवश्यकता के बजाय भौतिक आवश्यकता थी जो ईसाई धर्म अपनाने में मुख्य प्रेरक शक्ति थी।

आदिवासियों के बीच ईसाई धर्म के प्रसार के लिए मिशनरियों द्वारा इस्तेमाल किए गए तरीकों के विश्लेषण से पता चलता है कि वे आदिवासियों की स्थिति को बेहतर बनाने में वास्तव में रुचि रखते थे। उन्होंने न केवल कानूनी उपाय दिए, जो आगे चलकर प्रतिरोध का एक साधन साबित हुए, बल्कि शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में मिशनरी धर्मार्थ गतिविधियों ने आदिवासियों की बहुत मदद की। हालांकि, वे धर्मांतरण करवाने के लिए झूठे वादे करने के अलावा धमकी और जबरदस्ती का इस्तेमाल करने से भी पीछे नहीं हटे। इस तरह, यह स्पष्ट है कि उनका ध्यान न केवल आदिवासियों के आध्यात्मिक उत्थान पर था, बल्कि उन्हें ईसाई धर्म के दायरे में औपचारिक रूप से शामिल करने और बनाए रखने पर भी था, जिसके लिए वे इस उद्देश्य के लिए भौतिक प्रलोभन या बल का उपयोग करने के लिए भी तैयार थे। वे अपने हस्तक्षेप के लाभार्थियों को चुनने में भी चयनात्मक थे। इस तरह, इन तरीकों का आदिवासियों पर ईसाई धर्म के प्रभाव में एक सहवर्ती भूमिका होना तय था क्योंकि इन तरीकों का ध्यान आध्यात्मिक क्षेत्र के बजाय लौकिक क्षेत्र पर अधिक था।

संदर्भ

1. व्यास, एन.ए.(1989) ट्राइबल डेवलपमेंट बिटवीन प्रीमोर्डिनिटी एंड चेंज, इन सिंह एंड व्यास (एडी) ट्राइबल डेवलपमेंट एंड न्यू चैलेंज, उदयपुर हिमांशु पब्लिकेशन ।
2. नगला (1989) ट्राइबल डेवलपमेंट इन आंधश पर्सपेक्टिव, पृ.59-6.
3. रायवर्मन, बी.के. (1992) इसुज इन ट्राइबल डेवलपमेंट इन चैधरी बी (एडी) ट्राइबल ट्रा सफर्मेशन इन इ ंडिया, वो. 11 न्यू देल्ही, इंटर इंडिया पब्लिकेशन ।
4. शाह, जी (1992) ट्राइबल इसुज, प्राब्लेम एंड पर्सपेक्टिव इन चैधरी बी (एडी) प्रिमिटिव ट्राइबल फरूट स्टेप, न्यू दिल्ली मिनिस्ट्री आफ होम अफेर्य गवर्नमेंट अफ इंडिया ।
5. श्रीवास्तव, मालिनी (2007) द सेक्रेट कांपलेक्स आफ मुंडा ट्राइब्स एंथ्रोपोलजी, 9(4) 323-330
6. दास, एन.के.कल्चरल डायवर्सिटी रेलिजियस सिंक्रीएटिज्म एंड पीपल आफ इंडिया एंथ्रोपोलाजिकल इन्टरप्रटेशन
7. श्रीवास्तव, विनय कुमार (2010) सोशियो इकोनामिक करेक्टरस्टिक आफ ट्राइबल कम्युनिटीज दैट काल देम सेल्च हिंदू, इंडियन इंस्टीट्यूट अफ दलित स्टडीज एंड रेलिजियस एंड डेवलपमेंट प्रोग्राम नई दिल्ली वो. 1
8. अरोरा, विभा (2011) फ्रेमिंग इंडिजेनाइटी एंड एन्वायरमेंटलिज्म एमांग लेप्चा आफ सिक्किम इंस्टीट्यूट फार एशियन स्टडीज ।
9. सहाय, रविशंकर (2011) झारखंड: ए स्टडीज इन कल्चरल पैराडाइम, इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फार एशियन स्टडीज।
10. रसेल एवं हीरालाल (1916) हैंडबुक आन द ट्राइबल एंड कास्ट आफ सेंट्रल प्रोविंसेस आफ इंडिया वो. 4 मैकमिलन प्रेस

11. बहादुर एवं दुबे (1957) ए स्टडी आफ ट्राइबल पीपल एंड ट्राईबल एरिया आफ मध्य प्रदेश, इंदौर गवर्नमेंट रीजनल प्रेस ।

12. अरोरा (1972) कंप्रेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: एन इकोलजिकल पर्सपेक्टिव, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

13. अली,एस.ए. (1973) ट्राइबल डेमोग्राफी इन मध्यप्रदेश, भोपाल,जय भारत पब्लिकेशन ।

14. जोशी (1982) इकोनामिक डेवलपमेंट एंड सोशल चेंज इन साउथ।

15. रायजादा (1985) ट्राइबल डेवलपमेंट इन मध्यप्रदेश: ए प्लानिंग पर्सपेक्टिव, देल्ही इंटर इंडिया पब्लिकेशन